पारस परस

वर्ष-11 अंक-1 जनवरी-मार्च, 2021, रजि. नं.:यू.पी. एच.आई.एन./2011/39939 पृष्ठ -40 मूल्य- 25

सृजन स्मरण

जयशंकर प्रसाद

जन्म 30 जनवरी 1889 निधन 14 जनवरी 1937

हिमाद्रि तुंग शृंग से प्रबुद्ध शुद्ध भारती
स्वयंप्रभा समुज्ज्वला स्वतंत्रता पुकारती
अमर्त्य वीर पुत्र हो, दृढ़–प्रतिज्ञ सोच लो,
प्रशस्त पुण्य पंथ हैं – बढ़े चलो बढ़े चलो।

असंख्य कीर्ति–रश्मियाँ विकीर्ण दिव्य दाह–सी।
सपूत मातृभूमि के रुको न शूर साहसी।
अराति सैन्य सिंधु में – सुबाड़वाग्नि से जलो,
प्रवीर हो जयी बनो – बढ़े चलो बढ़े चलो।

वर्ष : 11 अंक : 1 जनवरी-मार्च, 2021 रजि. नं. : यूपी एचआईएन/2011/39939

पारस परस

हिन्दी काव्य की विविध विधाओं
की त्रैमासिक पत्रिका

संरक्षक
डॉ. शम्भुनाथ

प्रधान संपादक
प्रो. सूर्यप्रसाद दीक्षित

संपादक
डॉ. अनिल कुमार

कार्यकारी संपादक
सुशील कुमार अवस्थी

संपादकीय कार्यालय
538 क/1324, शिवलोक
त्रिवेणी नगर तृतीय, लखनऊ
मो. 9935930783
Email: paarasparas.lucknow@gmail.com

लेआउट एवं टाइप सेटिंग
मेट्रो प्रिंटर्स
लखनऊ

स्वामी प्रकाशक मुद्रक एवं संपादक डॉ. अनिल कुमार द्वारा प्रकाश पैकेजर्स, 257, गोलागंज, लखनऊ उ.प्र. से मुद्रित तथा ए-1/15 रश्मि, खण्ड, शारदा नगर योजना, लखनऊ उ.प्र. से प्रकाशित।
सम्पादकः डॉ. अनिल कुमार

पारस परस में प्रकाशित रचनाओं में व्यक्त विचार संबंधित रचनाकारों के हैं। संपादक अथवा प्रकाशक का रचनाओं में व्यक्त विचारों से सहमत होना आवश्यक नहीं है। पत्रिका से संबंधित सभी विवाद लखनऊ न्यायालय के अधीन होंगे। उपरोक्त सभी पद मानद एवं अवैतनिक हैं।

अनुक्रमणिका

संपादकीय		2
श्रद्धा सुमन		
बाबूजी चलते चले गये	डॉ. अनिल कुमार	4
पुण्य स्मरण		5
कालजयी		
करुणामय हे करुणामय	पारस नाथ पाठक 'प्रसून'	6
पिया चली फगनौटी कैसी गंध उमंग भरी	रांगेय राघव	7
आत्मकथ्य	जयशंकर प्रसाद	8
सालशुरू हो, साल खत्म हो!	भवानीपसाद मिश्र	9
समय के सारथी		
यह पत्थरों का शहर है, पत्थर के लोग हैं	परमानन्द शर्मा	10
मातृ सूक्त	गिरधर राठी	11
अंकुर	इब्बार रब्बी	12
अभिनय	मंगलेश डबराल	13
संग्रहालय	राजेश जोशी	14
इसी तरह का मैं	विष्णु नागर	15
राख और आग	भारतरत्न भार्गव	16
कलरव		
तोते पढ़ो	श्रीधर पाठक	17
चूँ चूँ चूँ चूँ म्याऊँ म्याऊँ	अयोध्या सिंह उपाध्याय' हरिऔध'	18
रेलगाड़ी	बालमुकुन्द गुप्त	19
छाता	सुखराम चौबे 'गुणाकरक'	20
नारी स्वर		
प्रार्थना	कात्यायनी	21
गति	सविता सिंह	22
अयाचित	अनामिका	23
इच्छा नदी के पुल पर	देवयानी भारद्वाज	24
विगत	लीना मल्होत्रा	25
घोषणा से पहले	बाबुषा कोहली	26
स्वागत है नए साल!	अनुराधा सिंह	27
कविता के लिए	रश्मि भारद्वाज	28
होने की बातें	लवली गोस्वामी	29
उद्बोधन		
मातृभूमि	मन्नन द्विवेदी 'गजपुरी'	30
हमारा प्यारा हिन्दुस्तान	गया प्रसाद शुक्ल 'सनेही'	31
शहीदों की चिंता	जगदंबा प्रसाद मिश्र 'हितैषी'	32
प्यारे भारत देश	माखनलाल चतुर्वेदी	33
नवोदित रचनाकार		
माँ	अशोक शर्मा	34
सम्भावना-गीत	मुकेश चन्द्र पाण्डेय	35
आ गया दिल जो कहीं और ही सूरत होगी	लाला माधव राम	36
चंदा मामा	विश्वप्रकाश दीक्षित	37
दीपक	हरी सिंह पाल	38
टूटी पड़ी है परंपरा	श्रीकांत वर्मा	39
फिर से गिरवी मकान है शायद	विकास जोशी	40

चौरी-चौरा : अहिंसात्मक आंदोलन का महत्वपूर्ण पड़ाव-1

वर्तमान में स्वतन्त्रता आन्दोलन के दौरान दिनांक 4 फरवरी, 1922 को घटित चौरी–चौरा की घटना के अमर शहीदों की स्मृति में शताब्दी समारोह का आयोजन किया जा रहा है। उक्त घटना को समझने से पूर्व इसकी पृष्ठभूमि में जाना आवश्यक है।

वर्ष 1914 से 1918 के मध्य प्रथम विश्वयुद्ध में भारतीयों ने ब्रिटिश सरकार को पूर्ण सहयोग प्रदान करते हुए हर कदम पर उनका साथ दिया। हजारों भारतीय सैनिक विश्व के विभिन्न भागों में मित्र राष्ट्रों की तरफ से युद्ध में लड़ते–लड़ते शहीद हो गए। प्रथम विश्वयुद्ध की समाप्ति के बाद भारतीय जनता व नेताओं को बड़ी उम्मीद थी कि अंग्रेजी सरकार भारतीय जनता के हित में कुछ महत्वपूर्ण सुधारात्मक कदम उठाएगी जिससे जनता को राहत मिलेगी किन्तु विश्वयुद्ध के समाप्त होते ही भारतीयों द्वारा किए गए इस योगदान के प्रति कृतज्ञता या प्रतिदान के भाव के विपरीत तत्कालीन भारत सरकार द्वारा अधिनियम–1919 (माण्टेग्यू–चेम्सफोर्ड सुधार) लागू किया गया जो काफी निराश करने वाला था। इसी के साथ ही सर सिडनी रोलेट की अध्यक्षता में 1917 में गठित समिति की संस्तुतियों के आधार पर फरवरी, 1919 में केन्द्रीय विधान परिषद् द्वारा जैम ।दंतबीपबंस ंदक त्मअवसनजपवदंतल ब्तपउम ।बज व ि1919 पारित कर दिया गया जिसमें अँग्रेजी सत्ता को राजद्रोह के अन्तर्गत किसी के भी विरुद्ध बिना मुकदमा चलाए ही जेल में बन्द करने का अधिकार मिल गया। इसके लिए अलग न्यायालय गठित करते हुए न्यायाधीशों को बिना बचाव पक्ष के वकीलों के ही इन मुकदमों की सुनवाई करने का अधिकार दे दिया गया। इनके आदेश के विरुद्ध अपील का कोई प्राविधान भी नहीं रखा गया। रोलेट की अध्यक्षता वाली समिति की संस्तुतियों पर बनाए जाने के कारण इसे रोलेट एक्ट भी कहा गया। इसके बारे में यह प्रचलित हो गया कि यह कानून ''न दलील, न वकील, न अपील'' वाला है, इसलिए इसे 'काला कानून' कहा गया।

वास्तव में प्रथम विश्वयुद्ध के दौरान भारत सुरक्षा कानून द्वारा प्रेस पर लगाए गए विभिन्न प्रतिबन्धों के साथ ही बिना जाँच के कारावास एवं देश निष्कासन की व्यवस्था को रोलेट एक्ट द्वारा और भी व्यापक व कठोर बना दिया गया। उक्त अधिनियम के तहत लगाए गए विभिन्न प्रतिबन्धों से तत्कालीन भारतीय जनजीवन त्रस्त और दुरूह होने लगा। उक्त अधिनियम के कुप्रभावों के विरोध में जगह–जगह जुलूस एवं सभाएं आयोजित की गईं। इसी दौरान दो नेताओं–सैफुद्दीन किचलू एवं सत्यपाल को गिरफ्तार कर कालापानी की सजा दे दी गई, जिसके विरोध में 13 अप्रैल, 1919 को बैसाखी के दिन अमृतसर में पवित्र स्वर्ण मन्दिर के निकट स्थित जलियांवाला बाग में जनसभा आयोजित की गई। उक्त सभा में उपस्थित निहत्थे जनसमूह पर अंग्रेज बिग्रेडियर जनरल रोजिनाल्ड एडवर्ड हैरी डायर द्वारा बिना किसी चेतावनी के अकारण ही गोली चलाने का आदेश दे दिया गया जिसमें हजारों लोगों की घटनास्थल पर ही मृत्यु हो गई और हजारों लोग गम्भीर रूप से घायल हो गए। इस दुःखद घटना की विश्वव्यापी निंदा हुई। रवीन्द्रनाथ टैगोर, महात्मा गाँधी सहित सभी नेताओं ने इसका कड़ा विरोध किया। यह खबर पूरे देश में आग की तरह फैल गई और ब्रिटिश सरकार का और तगड़ा विरोध शुरू हो गया।

इसके कुछ समय बाद दिनांक 4 सितम्बर, 1920 को कलकत्ता में आयोजित कांग्रेस के विशेष अधिवेशन में पूरे देश में असहयोग आन्दोलन चलाने का प्रस्ताव पारित किया गया जिसमें अंग्रेज सरकार व उसकी संस्थाओं के साथ सम्बन्ध न रखने का फैसला किया गया। दिसम्बर, 1920 में नागपुर में कांग्रेस का वार्षिक अधिवेशन हुआ। इस सम्मेलन में असहयोग आंदोलन से सम्बन्धित प्रस्ताव प्रस्तुत किया गया, जिसके अन्तर्गत कई कार्यक्रम सम्मिलित किए गए। इनमें मुख्यतः उपाधियों और प्रशस्तिपत्रों को लौटाना, ब्रिटिश सरकार के नियन्त्रण में

संचालित विद्यालयों, न्यायालयों के साथ ही विदेशी वस्त्रों का बहिष्कार शामिल था। इन प्रस्तावों में – भारतीय जनता द्वारा सरकारी सेवाओं से त्यागपत्र देना, ब्रिटिश कानूनों की अवज्ञा, कर अदा न करना, राष्ट्रीय विद्यालयों की स्थापना, स्थानीय विवादों के समाधान हेतु पंचायतों के गठन, हथकरघा/कताई–बुनाई को प्रोत्साहन आदि – पर भी विशेष बल दिया गया। इसमें अस्पृश्यता निवारण और प्रत्येक परिस्थिति में अहिंसा का पालन करना अनिवार्य था। गाँधी जी ने आश्वस्त किया कि यदि इन सभी कार्यक्रमों का पूरी निष्ठा के साथ पालन हुआ, तो एक वर्ष के अन्दर स्वतन्त्रता प्राप्त हो जाएगी।

उक्त आह्वान के फलस्वरूप भारत के सभी समूहों, सम्प्रदायों एवं वर्गों ने एक होकर अंग्रेजी व्यवस्था का विरोध किया। विद्यार्थियों ने सभी सरकारी विद्यालयों का परित्याग कर दिया, अधिवक्ताओं ने अदालतों का बहिष्कार किया, श्रमिक हड़ताल पर चले गए, किसानों ने भी इसमें बहुत बड़ी भूमिका निभाई। धीरे–धीरे आन्दोलन ने इतनी गति पकड़ ली कि तत्समय यह विश्व के सबसे बड़े आन्दोलन के रूप में उभरा। गाँधीजी प्रत्येक आन्दोलन में अहिंसा के पक्षधर थे। उनका मानना था कि सत्य और अहिंसा के मार्ग पर चलते हुए लक्ष्यों की प्राप्ति की जा सकती है। गाँधीजी साधन एवं साध्य की पवित्रता में पूरी आस्था रखते थे। इसके विपरीत ब्रिटिश हुकूमत को यह मालूम था कि यदि यह आन्दोलन आहिंसात्मक रहा तो इसे किसी रूप में समाप्त नहीं किया जा सकता। इसलिए अंग्रेज सरकार अपने मातहतों के माध्यम से अहिंसक आन्दोलनकारियों के साथ अभद्रता, उत्पीड़न का व्यवहार करती जिससे आंदोलनकारी हिंसक कार्यों के लिए उत्प्रेरित हों क्योंकि हिंसक आंदोलन का दमन आसान था।

इसी आह्वान से प्रेरित होकर उत्तर प्रदेश के गोरखपुर जनपद के चौरीचौरा नामक स्थान पर भी असहयोग आन्दोलन चलाया गया। दिनांक 4 फरवरी, 1922 को जब चौरी–चौरा में असहयोग आन्दोलन में भाग लेने वाले प्रदर्शनकारियों के एक बड़े समूह के साथ अंग्रेज पुलिस ने अभद्रता की और बदले में प्रदर्शनकारियों द्वारा पुलिस पर हमला करते हुए थाने में आग लगा दी गई जिसके कारण 3 नागरिक और 22 पुलिसकर्मियों की मृत्यु हो गई। इस घटना के बाद असहयोग आन्दोलन हिंसक होने लगा और आन्दोलन के हिंसात्मक दिशा में बढ़ने के कारण महात्मा गाँधी ने 12 फरवरी, 1922 को असहयोग आन्दोलन समाप्त करने की घोषणा कर दी। यद्यपि गाँधीजी के इस निर्णय का तत्कालीन अनेक नेताओं ने परोक्ष–अपरोक्ष रूप से विरोध किया किन्तु गाँधी जी इससे टस से मस नहीं हुए। उन्होंने 'यंग इण्डिया' में लिखा कि आंदोलन को हिंसक होने से बचाने के लिए मैं हर एक अपमान, हर एक यातनापूर्ण बहिष्कार यहाँ तक कि मौत भी सहने को तैयार हूँ। सत्य व अहिंसा के प्रति उनकी यह अपार निष्ठा उनके जीवन पर्यन्त बनी रही।

इस विचार प्रवाह को अगले अंक में भी जारी रखेंगे। इस अंक को आपके हाथों में सौंपते हुए अत्यंत प्रसन्नता हो रही है। इस अंक के रचनाकारों, उनके परिवार, प्रकाशक आदि के प्रति हृदय से आभार प्रकट करते हैं और आशा करते हैं कि भविष्य में भी आप सभी का सहयोग यथावत् मिलता रहेगा।

शुभ कामनाओं के साथ,

डा0 (अनिल कुमार)

बाबूजी चलते चले गये

- डॉ. अनिल कुमार पाठक

काँटे–कुशाग्र, कंकड़–पत्थर,
कितने घुमाव,कितने चक्कर।
तूफान भरे, ऊँचे–नीचे,
जल प्लावित, बर्फीले पथ पर।
दुःखदायी इन राहों में भी,
बाबूजी चलते चले गये।
बाबूजी चलते चले गये।।

उत्साह, उमंग भरी भाषा,
मंजिल पाने की अभिलाषा।
अँधियारी रातें रहीं भले,
पर त्यागी नहीं कभी आशा।
बिन विरत हुए नैतिकता से,
सत्पथ पर बढ़ते चले गये।
बाबूजी चलते चले गये।।

पर–हित में सबकुछ त्याग दिया,
बेसुर को सुमधुर राग दिया।
ममता–समता, बिन भेद–भाव,
मरुथल को भी नव बाग दिया।
बन मानवता के दृढ़संबल,
सबका हित करते चले गये।
बाबूजी चलते चले गये।।

❖❖❖

पं. पारस नाथ पाठक 'प्रसून'

जन्म– 17 जुलाई 1932
निधन– 23 जनवरी 2008

तुम अनादि हो, तुम अनन्त हो, दिग्दर्शक, प्रेरक, अरिहन्त।
अजर, अमर, हे प्राणतत्व! तुम, कण-कण में व्यापी बसन्त।।

शिक्षाविद् व हिन्दी कविता के सशक्त हस्ताक्षर **स्व0 पारस नाथ पाठक 'प्रसून'** का जन्म उत्तर प्रदेश के जनपद–जौनपुर के गोपालपुर ग्राम में गुरुपूर्णिमा को हुआ था। प्रारम्भिक शिक्षा स्थानीय विद्यालयों से प्राप्त करने के पश्चात उन्होंने इलाहाबाद विश्वविद्यालय, काशी विद्यापीठ, गोरखपुर विश्वविद्यालय तथा हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग से विभिन्न उपाधियाँ प्राप्त कीं। वे सर्वोदय विद्यापीठ इण्टर कालेज, मीरगंज, जौनपुर में हिन्दी विषय के प्रवक्ता पद पर कार्यरत रहे।

स्व. **'प्रसून'** की पावन स्मृति को अक्षुण्ण रखने के लिए **'पारस परस'** नाम से काव्य–त्रैमासिकी प्रकाशित करने का संकल्प लिया गया जो निर्बाध गति से चल रहा है।

स्वर्गीय 'प्रसून' जी की पुण्यतिथि पर विनम्र श्रद्धांजलि

❖❖❖

करुणामय, हे करुणामय!

- पं0. पारसनाथ पाठक 'प्रसून'

करुणामय, हे करुणामय!
जीवन–घन मधुमय रस बरसे।।

छा जाये हरियाली भू पर,
तारों से भर जाये अम्बर,
हो प्रकाश की रेखा घर–घर,
जीवन–वसुधा फिर से सरसे।
करुणामय, हे करुणामय!
जीवन–घन मधुमय रस बरसे।।

स्वप्नों का हो जाय बसेरा,
जीवन–पथ से मिटे अँधेरा,
आ जाये, इक नया सवेरा,
जीवन शतदल फिर से हरषे।
करुणामय, हे करुणामय!
जीवन घन मधुमय रस बरसे।।

यह विश्व खड़ा, रोये न कभी,
चेतना मधुर सोये न कभी,
वसुधा शापित होवे न कभी,
वरदान मिले जीवन को फिर से।
करुणामय, हे करुणामय!

❖❖❖

पिया चली फगनौटी, कैसी गंध उमंग भरी

- रांगेय राघव

पिया चली फगनौटी, कैसी गंध उमंग भरी,
ढफ पर बजते नये बोल, ज्यों मचकीं नई फरी।

चन्दा की रुपहली ज्योति है रस से भींग गयी,
कोयल की मदभरी तान है, टीसें सींच गयी।

दूर–दूर की हवा ला रही हलचल के जो बीज,
ममाखियों में भरती गुनगुन करती बड़ी किलोल।

मेरे मन में आती है बस एक बात सुन कन्त,
क्यों उठती है खेतों में अब भला सुहागिनि बोल?

सी–सी–सी कर चली बड़ी हचकोले भरके डीठ,
पल्ला मैंने साँधा अपना हाय जतन कर नींठ।

ढफ के बोल सुनूँ यों कब तक सारी रैन ढरी,
पिया चली फगनौटी, अब तो अँखियाँ नींद भरी।

❖❖❖

आत्मकथ्य

- जयशंकर प्रसाद

मधुप गुन–गुनाकर कह जाता कौन कहानी अपनी यह,
मुरझाकर गिर रहीं पत्तियाँ देखो कितनी आज घनी।
इस गंभीर अनंत–नीलिमा में असंख्य जीवन–इतिहास,
यह लो, करते ही रहते हैं अपने व्यंग्य मलिन उपहास।
तब भी कहते हो–कह डालूँ दुर्बलता अपनी बीती,
तुम सुनकर सुख पाओगे, देखोगे–यह गागर रीती।

किंतु कहीं ऐसा न हो कि तुम ही खाली करने वाले,
अपने को समझो, मेरा रस ले अपनी भरने वाले।
यह विडंबना! अरी सरलते हँसी तेरी उड़ाऊँ मैं,
भूलें अपनी या प्रवंचना औरों की दिखलाऊँ मैं।
उज्ज्वल गाथा कैसे गाऊँ, मधुर चाँदनी रातों की,
अरे खिल, खिलाकर हँसने वाली उन बातों की।

मिला कहाँ वह सुख जिसका मैं स्वप्न देखकर जाग गया,
आलिंगन में आते, आते मुसक्या कर जो भाग गया।
जिसके अरुण–कपोलों की मतवाली सुन्दर छाया में,
अनुरागिनी उषा लेती थी निज सुहाग मधुमाया में।
उसकी स्मृति पाथेय बनी है, थके पथिक की पंथा की,
सीवन को उधेड़ कर देखोगे क्यों मेरी कंथा की?

छोटे से जीवन की कैसे बड़ी कथाएँ आज कहूँ?
क्या यह अच्छा नहीं कि औरों की सुनता, मैं मौन रहूँ?
सुनकर क्या तुम भला करोगे मेरी भोली आत्मकथा?
अभी समय भी नहीं, थकी सोई है मेरी मौन व्यथा।

❖❖❖

साल शुरू हो, साल खत्म हो !

- भवानीप्रसाद मिश्र

साल शुरू हो दूध, दही से,
साल खत्म हो, शक्कर घी से,
पिपरमैंट, बिस्कुट मिसरी से
रहें, लबालव दोनों खीसें,
मस्त रहें सड़कों पर खेलें,
ऊधम करें मचाएँ हल्ला,
रहें, सुखी भीतर से, जी से।

साँझ, रात, दोपहर, सवेरा,
सबमें हो मस्ती का डेरा,
कातें सूत बनायें कपड़े,
दुनिया में क्यों डरें किसी से,
पंछी गीत सुनाये हमको,
बादल बिजली भाये हमको,
करें दोस्ती पेड़ फूल से,
लहर, लहर से नदी, नदी से।

आगे पीछे, ऊपर नीचे,
रहें, हंसी की रेखा खींचे,
पास–पड़ौस गाँव घर–बस्ती,
प्यार ढेर भर करें, सभी से।

❖❖❖

यह पत्थरों का शहर है, पत्थर के लोग हैं

- परमानन्द शर्मा

यह पत्थरों का शहर है, पत्थर के लोग हैं।
इस घर में आके बस गये किस घर के लोग हैं।

हमको न कैदो–बन्द के समझाओ कायदे,
हम बे–मुहार जोगी हैं, दर–दर के लोग हैं।

गैरों से कुछ गिला नहीं हैं, गैर फिर भी गैर,
अपनों से है गिला कि वो अन्दर के लोग हैं।

वो जिन के साथ उम्र के कौलो–करार थे,
बिल्कुल यकीं नहीं था कि पल भर के लोग हैं।

हम हाले–दिल सुना के जिन्हें ख्वार हो गये
मालूम क्या था सब के सब पत्थर के लोग हैं।

किस–किस को दे सकोगे तुम रगबत उड़ान की,
इस घर में सब गुलाम हैं, बे–पर के लोग हैं।

कुछ लोग हैं कि जिनको शरर से लगाव है,
वो साफ–गो शफ्फाक–दिल मरमर के लोग हैं।

❖❖❖

मातृ सूक्त

– गिरधर राठी

वह पूर्ण है,
उसके भीतर से
निकलेगा पूर्ण।

पूर्ण के भीतर से पूर्ण के निकलने पर
पूर्ण ही बचेगा,
निकले हुए पूर्ण के भीतर से निकलेगा
पूर्ण।

होती रहेगी परिक्रमा पूर्ण की,
यही है विधान।
किन्तु यह विधि का
अविकल उपहास है,
इसीलिए
पूर्णांक होकर भी
कोई हो जाता है कनसुरा
कोई कर्कश कोई करुणाविहीन

इस तरह विधाता को पूर्णता लौटाकर
आधे–अधूरे हम सब
रखते हैं, उस को प्रसन्न।

❖❖❖

अंकुर

- इब्बार रब्बी

अंकुर जब सिर उठाता है–
जमीन की छत फोड़ गिराता है,
वह जब अन्धेरे में अँगड़ाता है
मिट्टी का कलेजा फट जाता है।
हरी छतरियों की तन जाती है, कतार
छापामारों के दस्ते सज जाते हैं,
पाँत के पाँत
नई हो या पुरानी
वह हर जमीन काटता है।
हरा सिर हिलाता है,
नन्हा धड़ तानता है,
अंकुर आशा का रँग जमाता है।
क्या से क्या हो रहा हूँ,
छाल तड़क रही है,
किल्ले फूट रहे हैं,
बच्चों की हँसी में–
मुस्करा रहा हूँ,
फूलों की पाँत में
गा रहा हूँ ।

❖❖❖

अभिनय

- मंगलेश डबराल

एक गहन आत्मविश्वास से भरकर
सुबह निकल पड़ता हूँ, घर से
ताकि सारा दिन आश्वस्त रह सकूँ।
एक आदमी से मिलते हुए मुस्कराता हूँ
वह एकाएक देख लेता है मेरी उदासी
एक से तपाक से हाथ मिलाता हूँ।
वह जान जाता है मैं भीतर से हूँ अशांत
एक दोस्त के सामने खामोश बैठ जाता हूँ।
वह कहता है तुम दुबले बीमार क्यों दिखते हो
जिन्होंने मुझे कभी घर में नहीं देखा
वे कहते हैं अरे आप टी०वी० पर दिखे थे एक दिन।

बाजारों में घूमता हूँ, निःशब्द,
डिब्बों में बन्द हो रहा है पूरा देश,
पूरा जीवन बिक्री के लिए,
एक नई रंगीन किताब है जो मेरी कविता के
विरोध में आयी है।
जिसमें छपे सुन्दर चेहरों को कोई कष्ट नहीं,
जगह–जगह नृत्य की मुद्राएँ हैं विचार के बदले।
जनाब एक पूरी फिल्म है लम्बी
आप खरीद लें और भरपूर आनन्द उठायें।

शेष जो कुछ है अभिनय है
चारों ओर आवाजें आ रही हैं,
मेकअप बदलने का भी समय नहीं है,
हत्यारा एक मासूम के कपड़े पहनकर चला आया है।
वह जिसे अपने पर गर्व था
एक खुशामदी की आवाज में गिड़गिड़ा रहा है।
ट्रेजडी है संक्षिप्त लम्बा प्रहसन
हरेक चाहता है किस तरह झपट लूँ
सर्वश्रेष्ठ अभिनेता का पुरस्कार।

❖❖❖

संग्रहालय

- राजेश जोशी

वहाँ बहुत सारी चीजें थी करीने से सजी हुईं
जिन्हें गुजरे वक्त के लोगों ने कभी इस्तेमाल किया था ।

दीवारों पर सुनहरी फ्रेम में मढ़े हुए उन शासकों के विशाल चित्र थे
जिनके नीचे उनका नाम और समय भी लिखा था,
जिन्होंने उन चीजों का उपयोग किया था,
लेकिन उन चीजों को बनाने वालों का कोई चित्र वहाँ नहीं था
न कहीं उनका कोई नाम था।

अचकनें थीं, पगड़ियाँ थीं, तरह–तरह के जूते और हुक्के थे।
लेकिन उन दरजियों ,रंगरेजों , मोचियों और
हुक्का भरने वालों का कोई जिक्र नहीं था ।
खाना खाने की नक्काशीदार रकाबियाँ थीं,
कटोरियाँ और कटोरदान थे,
गिलास और उगालदान थे।
खाना पकाने के बड़े–बड़े देग और खाना परोसने के करछुल थे
पर खाना पकाने वाले बावरचियों के नामों का उल्लेख
कहीं नहीं था।
खाना पकाने की भट्ठियाँ और बड़ी–बड़ी सिगड़ियाँ थीं
पर उन सिगड़ियों में आग नहीं थी।

आग की सिर्फ कहानियाँ थीं
लेकिन आग नहीं थी।
आग का संग्रह करना संभव नहीं था।
सिर्फ आग थी
जो आज को बीते हुए समय से अलग करती थी।

❖❖❖

इसी तरह का मैं

- विष्णु नागर

उन दिनों,
जब मैं, मैं नहीं था
कोई और था,
और
कोई और होने की तरफ लगातार बढ़ रहा था,
तब भी
मेरा नाम वही था, जो आज है।
उन दिनों की याद दिलाते हुए
लोग पूछते हैं,
तब तो आप ऐसा कहते थे,
ऐसा करते थे,
अब तो आप ऐसा नहीं कहते,
ऐसा नहीं करते,
आप पहले सही थे,
या अब हैं ?
हमें तो पहले सही लगते थे।

तो मैं जवाब देता हूँ,
शायद आप सही कह रहे होंगे
और एकान्त में जाकर रोता हूँ।
पूछता हूँ खुद से
कि क्या मैं उसी तरह का
मैं बनने चला था ?

❖❖❖

राख और आग

- भारतरत्न भार्गव

बिसरी – बिखरी पगडण्डियों को
सँवारने – बुहारने वाले
लहुलुहान जिद्दी हाथों को पढ़कर
कोई भी समझ सकता था।
कँटीली झाड़ियों और पथरीली जमीन की वह दुनिया
ओझल क्यों रही राख की चादर में लिपटी।

यहीं से उड़ान भरते हैं वे दृष्टिकल्प,
जिनकी सुकुमार आँखों के लिए
तितलियों के पंखों से निर्मित है रंगपरी।
दृष्ट हैं निर्जन बस्तियाँ,
अलंकृत हतोपलब्धियाँ।
आँखों के अन्दर की आँखों से
फूटते उजाले ने परोस दिया
अर्थ गर्भित शून्य।
यहीं कहीं, हाँ यहीं कहीं होगा
पूर्वजों के नामालूम खजाने का
अघोषित रहस्य।
पुराणों और इतिहास के ताबूतों से
फूटती चिंगारियाँ रात के अन्धेरे में।

सिरे खो गये हैं और गाँठे अबूझ
फिर से शुरू करनी होगी
राख और आग की परिक्रमा,
परिभाषित करना नये सिरे से आग को।
कहाँ है वह ओझा
जो राख को
आग बनाने का मन्त्र जानता है।

❖❖❖

तोते पढ़ो

- श्रीधर पाठक

पढ़ मेरे तोते सीता–राम,
सीता–राम राधा–श्याम।
राधा–श्याम, श्याम–श्याम,
श्याम–श्याम, सीता–राम।

हरि, मुरारे, गोविंदे,
श्री मुकुन्द, परमानंदे।
परम पुरुष माधव, मायेश,
नारायण, त्रैलोक्य नरेश।

अलख निरंजन निर्गुन नाम,
अखिल लोक कृत पूरन काम।
पढ़ मेरे तोते सीता–राम,
सीता–राम राधा–श्याम।

हरा तेरा चटकीला रंग,
भरा गठीला सुंदर अंग।
गले बिराजे डोरा लाल,
गोल चोंच, फिर बोल रसाल।

बन पेड़ों में तेरा वास,
भोजन फल विचरन आकाश।
अब सुंदर पिंजड़े में बंद,
'सब तज हर भज' कर आनंद।

देख तुझे और तेरा ढंग,
मन में उपजे अजब उमंग।
बोलो प्यारे सीता–राम,
सीता–राम, राधा–श्याम।

❖❖❖

चूँ चूँ चूँ चूँ, म्याऊँ म्याऊँ

– अयोध्या सिंह उपाध्याय 'हरिऔध'

चूँ–चूँ चूँ–चूँ चूहा बोले,
म्याऊँ, म्याऊँ बिल्ली,
ती–ती, ती–ती कीरा बोले,
झीं–झीं झीं–झीं झिल्ली।

किट–किट–किट बिस्तुइया बोले,
किर–किर–किर गिलहैरी,
तुन–तुन–तुन इकतारा बोले,
पी–पी–पी, पिपहैरी।

टन–टन टन–टन घंटी बोले,
ठन–ठन–ठन्न रुपैया,
बछड़ा देखे, बाँ–बाँ बोले,
तेरी प्यारी गइया।

ठनक–ठनक कर तबला बोले,
डिम–डिम डिम–डिम डौंडी,
टेढ़ी–मेढ़ी बातें बोले,
बाबा जी की लौंडी।

❖❖❖

रेलगाड़ी

- बालमुकुंद गुप्त

हिस–हिस हिस–हिस हिस–हिस करती, रेल धड़ाधड़ जाती है,
जिन जंजीरों से जकड़ी है, उन्हें खूब खुड़काती है।
दोनों ओर दूर से दुनिया देख रही है बाँध कतार,
धुँए के बल से जाती है धुँआ उड़ाती धूँआधार।
आग के बल से कल चलती है, देखो जी इस कल का बल,
घोड़ा टट्टू नहीं जुता कुछ, खेंच रही है खाली कल।

मात बगूलों को करती है, उड़ती है, जैसे तूफान,
कलयुग का कल का रथ कहिए या धरती का कहो विमान।
पल में पार दिनों का रास्ता इसमें बैठे होता है,
कोई बैठ तमाशा देखे, कोई सुख से सोता है।
बैठने वाले बैठे–बैठे देखते हैं कितने ही रंग,
जंगल, झील, पेड़ बन पत्ते, नाव नहर–नदियों के ढंग।

जब गाँवों के निकट रेलगाड़ी को ठहरा पाते हैं,
नर–नारी तब आस–पास के कैसे दौड़े आते हैं।
हिस–हिस हिस–हिस धड़धड़ करती फिर गाड़ी उड़ जाती है,
सबको खबरदार करने को सीटी खूब बजाती है।

❖❖❖

छाता

– सुखराम चौबे 'गुणाकरक'

यह छाता है सुखदाई,
मैं इसे न दूँगा भाई।

जब घर से बाहर जाता,
या बाहर से घर आता,
यह संग में आता, जाता,
रखता है सदा मिताई।

जब पानी बरसा करता,
मग चलने में जी डरता,
तब मेरी रक्षा करता,
यों होता सदा सहाई।

जब धूप कड़ी होती है,
तब तपन बड़ी होती है,
भुन सड़क पड़ी होती है,
दे छाया, करे भलाई।

यह समय पड़े पर सच्चा,
डंडे का पूरा बच्चा,
सिरहाना भी है, अच्छा,
मैं क्या–क्या करूँ बड़ाई!

❖❖❖

प्रार्थना

- कात्यायनी

प्रभु !
मुझे गौरवान्वित होने के लिए
सच बोलने का मौका दो,
परोपकार करने का
स्वर्णिम अवसर दो, प्रभु! मुझे।

भोजन दो प्रभु, ताकि मैं
तुम्हारी भक्ति करने के लिए
जीवित रह सकूँ।
मेरे दरवाजे पर थोड़े से गरीबों को
भेज दो,
मैं भूखों को भोजन कराना चाहता हूँ।

प्रभु, मुझे दान करने के लिए
सोने की गिन्नियाँ दो,
प्रभु, मुझे वफादार पत्नी, आज्ञाकारी पुत्र,
लायक भाई और शरीफ पड़ोसी दो,

प्रभु, मुझे इहलोक में
सुखी जीवन दो ताकि बुढ़ापे में
परलोक की चिन्ता कर सकूँ।

प्रभु,
मेरी आत्मा प्रायश्चित करने के लिए
तड़प रही है,
मुझे पाप करने के लिए
एक औरत दो।

❖❖❖

गति

– सविता सिंह

हूँ ऐसी गति में
उद्विग्न इतनी कि
तोड़ती हर उस डोर को जिससे हूँ बँधी
जगी कई रातों से,
थकी,
शताब्दियों से कई
जगी वैसे भी हूँ नींद में ही चलती फिर भी
रात की मुँडेर पर बैठी बड़ी चिड़िया को पकड़ने की चेष्टा
करती।

गिरने से बचने के यत्न में लगी
पग–पग पर समेटती रात के विस्तार को,
गति में हूँ बढ़ती,
उद्वग्नि इतनी कि समझती भी नहीं इसके खतरे।

मैं तारों का एक घर
न जाने कितने तारे,
मेरी आँखों में आ–आ कर धवस्त होते रहे हैं।
उनकी तेज रोशनी,
गहन ऊष्मा उनकी,
आकर मेरी आँखों में बुझती रही हैं।
और मैं इन तारों का
एक विशाल दीप्त घर बन गयी हूँ–
जिसमें मनुष्यों की भाँति ये मरने आते हैं।

आज भी हर रात
एक तारा उतरता है मुझमें,
हर रात उतरना ही प्रकाश मरता है,
उतनी ही ऊष्मा चली जाती है, कहीं।

❖❖❖

अयाचित

– अनामिका

मेरे भंडार में
एक बोरा 'अगला जनम'
'पिछला जनम' सात कार्टन
रख गई थी, मेरी माँ।

चूहे बहुत चटोरे थे
घुनों को पता ही नहीं था–
कुनबा सीमित रखने का नुस्खा।
... सो, सबों ने मिल–बाँटकर
मेरा भविष्य तीन चौथाई
और अतीत आधा
मजे से हजम कर लिया।

बाकी जो बचा
उसे बीन–फटककर मैंने
सब उधार चुकता किया,
हारी–बीमारी निकाली
लेन–देन निबटा दिया।

अब मेरे पास भला क्या है,
अगर तुम्हें ऐसा लगता है–
कुछ है जो मेरी इन हड्डियों में है अब तक–
मसलन कि आग
तो आओ
अपनी लुकाठी सुलगाओ।

❖❖❖

इच्छा नदी के पुल पर

- देवयानी भारद्वाज

इच्छा नदी का पुल
किसी भी क्षण भर–भरा कर ढह जायेगा।
इस पुल में दरारें पड़ गई हैं, बहुत
और नदी का वेग बहुत तेज है।
सदियों से इस पुल पर खड़ी वह स्त्री
कई बार कर चुकी है इरादा कि
पुल के टूटने से पहले ही लगा दे नदी में छलांग।
नियति के हाथों नहीं
खुद अपने हाथों लिखना चाहती है वह
अपनी दास्तान।
इस स्त्री के पैरों में लोहे के जूते हैं–
और जिस जगह वह खड़ी है,
वहाँ की जमीन चुम्बक से बनी है।
स्त्री कई बार झुकी है
इन जूतों के तस्मे खोलने को
और पुल की जर्जर दशा देख ठहर जाती है।
सोचती है, कुछ
क्या वह किसी की प्रतीक्षा में है,
या उसे तलाश है–
उस नाव की जिसमें बैठ–
वह नदी की सैर को निकले,
और लौटे झोली में भर–भर शंख और सीपियाँ।
नदी किनारे के छिछले पानी में छप–छप नहीं करना चाहती, वह
आकंठ डूबने के बाद भी–
चाहती है, लौटना बार–बार,
उसे प्यारा है जीवन का तमाम कारोबार।

❖❖❖

विगत

- लीना मल्होत्रा

वह एक वीरान सड़क थी,
उसमे विगत की हँसी के कुछ पद–चिन्ह थे।
वह निकली थी, घर से–
गुम हो जाने के लिए।

उसके पास एक झोला था,
जिसमें एक खुदकुशी किया हुआ समंदर था,
वह उसे बहुत आत्मीय था।
वह दर्द को सम्हाल कर रख सकती थी,
और रोंयेदार घास की तरह बिछा कर अपनी जिन्दगी को मुलायम कर लेती थी।

उसने चुनी थी, कसक,
हांलाकि प्रेम उसे उपलब्ध था, क्योंकि वह सुन्दर थी।
लेकिन उसने चुनी थी कसक और प्रतीक्षा–
ताकि वह खुद से प्रेम कर सके।
और चुना एक अजनबी शहर
जहाँ सब लोग निर्वासित कर दिए गए थे
और पेड़ों का मेला लगा था।

और यहाँ वह कुछ दिन सुकून से जी सकती थी।
यहाँ उसे कोई नहीं जानता
कोई यह भी नहीं जानता कि सिजोफ्रेनिक है, वह

और उसके साथ क्या हुआ था।
जब उसका बच्चा रोता है तो पता है उसे
कि उसे दूध पिलाना है।

❖❖❖

घोषणा से पहले

- बाबुषा कोहली

इससे पहले कि मैं ये घोषित कर दूँ
डाल दो मेरे पैरों में बेड़ियाँ,
चढ़ा दो मुझे सूली पर,
टाँग कर सलीब पर मुझे,
मेरे हाथ–पैरों पर कीलें ठोंक दो–
या फिर पिला दो प्याला जहर का।

इससे पहले कि मैं ये घोषित कर दूँ–
मैं ही धरती हूँ, मैं ही वायु, आकाश, जल और अग्नि भी,
मैं ही हूँ पेड़–पहाड़,
नदियाँ, नौतपा और इन्द्रधनुष।
महौट की बारिश भी मैं जेठ का सूखा भी मैं
आँधी बवण्डर सुनामी भी मैं ही हूँ।
मैं ही कनेर हूँ, गाजरघास हूँ, बेशरम का फूल,
गौतम के सिर पर खड़ा हुआ बरगद भी मैं,
मैं ही दलदल हूँ।
मैं ही गड्ढे, कूड़ा–करकट, कीचड़–कचरा मैं ही हूँ,
मैं ही भूख हूँ, मैं ही भोजन,
मैं ही प्यास हूँ और अमृत भी मैं।
मैं दिखती भी हूँ, छिपती भी हूँ, उड़ती भी हूँ, खिलती भी हूँ।

मैं अनन्त हूँ, असीम हूँ, अविभाज्य हूँ,
इससे पहले कि मैं ये घोषित कर दूँ,
मार दो गोली मुझे, चौराहे पर।

❖❖❖

स्वागत है नए साल!

- अनुराधा सिंह

खेद, कि इस बार भी नहीं मिलूँगी।
पीठ पर वार खाये योद्धा की तरह,
जिसकी वर्दी हो चटख निकोर
और हों तरकश में सारे तीर सलामत।
नहीं मिलूँगी, भग्न स्वप्न सी विफल
जो डरता हो नींद से।
रात नयी वांछा न लाती हो जिसके लिए,
कहो, मुझे दुराग्रही।
पर क्यों मिलूँ उस अस्त्र सी
जो साधता हो लक्ष्य कहीं खेलता हो किन्हीं और हाथों,
जिसकी धार में जंग लग जाती हो, बिन पिए प्रतिशोध रक्त।
तुम्हें वह औरत बन कर तो कभी नहीं मिलूँगी
जो चोट खाने पर रोती,
मारने पर मर जाती,
छले जाते ही व्यर्थ हो जाती है।

शायद मिलूँ उस शाख सी,
जिसके घाव की जगह ही
नयी कोंपलें उग आती हैं।
भूगर्भीय जल की तरह
नष्ट होते, होते
बढ़ आऊँगी, हर बारिश में।
और उस दाने की तरह
जो पेट की आग न बुझा पाये
तो उग आता है अगली पीढ़ी–
का अन्न बन कर।

अब तय करना
किस भाषा में मिलोगे मुझसे,
क्योंकि मैं तो व्याकरण से उलट
परिभाषाएँ तोड़ कर मिलूँगी।

❖❖❖

कविता के लिए

– रश्मि भारद्वाज

जब–जब शब्द कण्ठ में सिसकी से अटके,
हमने उन्हें कविता में पिरो लिया।
कविता में लिखे हमने हमारे दुःख,
बुन दिए शब्दों में हर छोटे–बड़े सुख,
कविता में हमने अन्धेरों के रतजगे लिखे,
कविता में हमने उजालों के भय लिखे,
कविता ने समेट लिया हमारा अकेलापन।
कविता रोटी नहीं बन सकी,
कविता रोशनी भी नहीं ला सकी,
लेकिन हम जब भी टूटे तो,
टूट कर बिखरने को हुए,
कविता ने हमें थाम लिया।

संगी साथ छोड़ते गए,
लौटते कदमों की थाप से हृदय काँपा,
कविता उँगली थामे खड़ी रही।
जब हर मन्त्र बेअसर रहा,
वह प्रार्थना–सी होंठों पर आती रही।
सूखे हुए मौसम में
वह पलकों पर नमी बन टिकी रही,
हमें रोना–हँसना याद रहा,
हम जी सके,
हम जीते रहेंगे–
कि हमने कविता कही।

❖❖❖

होने की बातें

– लवली गोस्वामी

तुम धरती पर पर्वत की तरह करवट लेटना,
तुम पर नदियाँ चाहना से भरी देह लिए इठलाती बहेंगी।

तुम भव्यता और मामूलीपन की दाँतकाटी दोस्ती में बदल जाना,
तुम पर लोक कथाएँ अपनी गीली साड़ियाँ सुखायेंगी।

तुम रात के आकाश का नक्षत्री विस्तार हो जाओ,
दिशाज्ञान के जिज्ञासु तुम्हारा सत्कार करें।

तुम पानी की वह बूँद होना
जो कुमारसंभव की तपस्यारत पार्वती की पलकों पर गिरी–
जिसने माथे के दर्प से हृदय के प्रेम तक की यात्रा पूरी की।
तुम चरम तपस्या में की गई वह अदम्य कामना होना,

अगर होना ही है तो लता का वह हिस्सा होना,
जो एक तरफ मूर्छा से उठी वसंतसेना थामती है–
दूसरी तरफ भिक्षु संवाहक।
तुम आसक्ति और सन्यास की संधि होना,

तुम्हारी निश्छल आँखों में संध्या तारा बनकर फूटे बेला की कलियाँ,
नेह से भर आये स्वर में प्राप्तियों की मचलती मछलियाँ गोता लगायें।

तुम मन की ऊँची उड़ान से ऊब कर टूटा पंख बनना,
कोई आदिवासिन नृत्यांगना तुम्हें जुड़े में खोंसेगी,
तुम उसकी कदमताल पर थिरकना।

जो तुम्हें माथे सजाये
उसकी चाल की लय पर डूबना–उबरना।

❖❖❖

मातृभूमि

– मन्नन द्विवेदी 'गजपुरी'

जन्म दिया माता–सा जिसने, किया सदा लालन–पालन,
जिसके मिट्टी जल से ही है, रचा गया हम सबका तन।

गिरिवर गण रक्षा करते हैं, उच्च उठा के शृंग महान,
जिसके लता द्रुमादिक करते, हमको अपनी छाया दान।

माता केवल बाल–काल में, निज अंकों में धरती है,
हम अशक्त जब तलक तभी तक, पालन पोषण करती है।

मातृभूमि करती है मेरा, लालन सदा मृत्यु पर्यन्त,
जिसके दया प्रवाहों का नहि, होता सपने में भी अन्त।

मर जाने पर कण देहों के, इसमें ही मिल जाते हैं,
हिन्दू जलते, यवन, इसाई, दफन इसी में पाते हैं।

ऐसी मातृभूमि मेरी है, स्वर्गलोक से भी प्यारी,
जिसके पद कमलों पर मेरा, तन, मन, धन सब बलिहारी।

❖❖❖

हमारा प्यारा हिन्दुस्तान

– गयाप्रसाद शुक्ल 'सनेही'

जिसको लिए गोद में सागर,
हिम–किरीट शोभित है, सर पर।
जहाँ आत्म–चिन्तन था घर–घर,
पूरब–पश्चिम, दक्षिण–उत्तर।।
जहाँ से फैली ज्योति महान।
हमारा प्यारा हिन्दुस्तान।।

जिसके गौरव–गान पुराने,
जिसके वेद–पुरान पुराने,
सुभट वीर–बलवान पुराने,
भीम और हनुमान पुराने।।
जानता जिनको एक जहान।
हमारा प्यारा हिन्दुस्तान।।

जिसमें लगा है धर्म का मेला,
ज्ञात बुद्ध जो रहा अकेला,
खेल अलौकिक एक सा खेला,
सारा विश्व हो गया चेला।।
मिला गुरु गौरव सम्मान।
हमारा प्यारा हिन्दुस्तान।।

गर्वित है वह बलिदानों पर,
खेलेगा अपने प्रानों पर,
हिन्दी तेगे हैं सानों पर,
हाथ धरेगा अरि कानों पर।।
देखकर बाँके वीर जवान।
हमारा प्यारा हिन्दुस्तान।।

❖❖❖

शहीदों की चिंता

– जगदंबा प्रसाद मिश्र 'हितैषी'

उरूजे कामयाबी पर कभी हिन्दोस्तां होगा,
रिहा सैयाद के हाथों से अपना आशियां होगा।

चखायेंगे मजा बर्बादिए गुलशन का गुलचीं को,
बहार आ जायेगी उस दम जब अपना बागबां होगा।

ये आये दिन की छेड़ अच्छी नहीं ऐ खंजरे कातिल,
पता कब फैसला उनके हमारे दरमियां होगा।

जुदा मत हो मेरे पहलू से ऐ दर्दे वतन हरगिज,
न जाने बाद मुर्दन मैं कहाँ औ तू कहाँ होगा।

वतन की आबरू का पास देखें कौन करता है,
सुना है आज मकतल में हमारा इम्तिहां होगा।

शहीदों की चिताओं पर लगेंगे हर बरस मेले,
वतन पर मरनेवालों का यही बाकी निशां होगा।

कभी वह दिन भी आयेगा जब अपना राज देखेंगे,
जब अपनी ही जमीं होगी और अपना आसमां होगा।

❖❖❖

प्यारे भारत देश

- माखनलाल चतुर्वेदी

गगन–गगन तेरा यश फहरा,
पवन–पवन तेरा बल गहरा,
क्षिति–जल–नभ पर डाल हिंडोले
चरण–चरण संचरण सुनहरा।
ओ ऋषियों के त्वेष
प्यारे भारत देश।।
वेदों से बलिदानों तक जो होड़ लगी,
प्रथम प्रभात किरण से हिम में जोत जागी,
उतर पड़ी गंगा खेतों खलिहानों तक,
मानों आँसू आये बलि–महमानों तक,
सुख कर जग के क्लेश।
प्यारे भारत देश।।
तेरे पर्वत शिखर कि नभ को भू के मौन इशारे,
तेरे वन जग उठे पवन से हरित इरादे प्यारे,
राम–कृष्ण के लीलालय में उठे बुद्ध की वाणी,
काबा से कैलाश तलक उमड़ी कविता कल्याणी,
बातें करे, दिनेश।
प्यारे भारत देश।
जपी–तपी, संन्यासी, कर्षक कृष्ण रंग में डूबे,
हम सब एक, अनेक रूप में, क्या उभरे, क्या ऊबे,
सजग एशिया की सीमा में रहता कैद नहीं,
काले–गोरे, रंग–बिरंगे हममें भेद नहीं,
श्रम के भाग्य निवेश।
प्यारे भारत देश।।
वह बज उठी बाँसुरी यमुना तट से धीरे–धीरे,
उठ आई यह भरत–मेदिनी, शीतल मन्द समीरे,
बोल रहा इतिहास, देश सोये रहस्य है खोल रहा,
जय प्रयत्न, जिन पर आन्दोलित–जग हँस–हँस जय बोल रहा,
जय–जय अमित अशेष।
प्यारे भारत देश।।

❖❖❖

माँ

– अशोक शर्मा

तुम नहीं हो बताओ तो अब कौन से घर जाऊँ मैं,
मन करता है बस जिंदा रह कर भी मर जाऊँ मैं।

तुम्हारे चले जाने के बाद सब सूना सा लगता है,
बात करने को नहीं है, मन है चुप कर जाऊँ मैं।

सबसे बातें, मुलाकातें, बस बेगानी सी लगती हैं,
तुमे मिलने का मन हो, तो कहो कौन घर जाऊँ मैं।

कभी–कभी तो हर चेहरा माँ तेरे जैसा लगता हैं,
अब तुम जैसी ढूंढ़ने को कहाँ और किधर जाऊँ मैं।

क्यों इतनी तुम अनजान, और निर्मोही हो गई माँ,
तेरी यादों का पावन दिया कैसे बुझा कर जाऊँ मैं।

अब तो बस एक ही मेरी इच्छा है, पूरी कर देना,
अगले जन्म मैं भी तेरा ही बेटा आ कर बन जाऊँ मैं।

❖❖❖

सम्भावना-गीत

- मुकेश चन्द्र पाण्डेय

कभी स्वीकारा है
पृथ्वी के भटकाव को,
दिशाहीनता से सीख लेकर किसी गंतव्य को नकारा है?
स्वप्नों को पनपते देखा है,
क्या फलित होते वृक्षों को छोड़ा है फलाफूला?
क्यों हर फसल को सींचते वक्त
उसके लहराने की कल्पना की है, हाथ में दराती रख कर?
चाँद की परछाई को पोखरों में कैद रखा है,
पंजे क्यों जमायें हैं जमीनों पर?
चीटियों को उड़ते हुए देख
विषाद से भर जाते हो, मातम करते हो।
क्या कभी सूर्य से आँखें मिलायी हैं?
गंजे पहाड़ों पर छाँव की अपेक्षा रखते हो,
कभी किसी एक चीड़ को सुलगने से बचाया है?
हर शब्द को अर्थ से पहचानने की चेष्टा रहती है,
कभी अंतर के अंधकार में लोप होते स्वयम् को टटोला है ?
चिड़ियों का चहचहाना मुग्ध कर देता है, तुम्हें,
कभी तिनके से सी के भी गाँठें लगायी हैं ?
तितलियों के वास्ते रंग–
संचित करते देखा जा सकता है क्या तुम्हें कभी,
व तुम्हारी संभावनाओं में विफलता के लिए भी
कोई स्थान रिक्त है या नहीं ?

❖❖❖

आ गया दिल जो कहीं और ही सूरत होगी

- लाला माधव राम

आ गया दिल जो कहीं और ही सूरत होगी,
लोग देखेंगे तमाशा जो मोहब्बत होगी।

दिल–लगी तर्क–ए–मोहब्बत नहीं तक्सीर मुआफ,
होते होते मिरे काबू में तबीअत होगी।

उनके आने की खबर सुनके तो ये हाल हुआ,
जब वो आयेंगे तो फिर क्या मिरी हालत होगी।

टुकड़े कर डाले कोई उसके तो मैं भी खुश हूँ,
दिल न होगा, न मिरी जान मोहब्बत होगी।

वो छुपाया करें इस बात से क्या होता है,
आप सर चढ़ के पुकारेगी जो उल्फत होगी।

ये न फरमाओ शब–ए–हिज्र कटेगी, क्यूँकर,
तुम को क्या काम, जो होगी मिरी हालत होगी।

मार डाला मुझे बे–मौत बड़ा काम किया,
खूब तारीफ तिरी ऐ शब–ए–फुर्कत होगी।

ऐ दिल–ए–जार मजा देख लिया उल्फत का,
हम न कहते थे कि इस काम में जिल्लत होगी।

ये भी कुछ बात है फिर वस्ल न हो ऐ 'जौहर',
रंज राहत से हुआ रंज से राहत होगी।

❖❖❖

चंदा मामा

- विश्वप्रकाश दीक्षित

चंदा मामा, मैंने तुमको कितनी बार पुकारा,
लेकिन मेरी उस पुकार पर गया न ध्यान तुम्हारा।
मेरे मन में यह आता है, तुमको पास बुलाऊँ,
अपने जन्मदिवस पर मिलकर, साथ तुम्हारे गाऊँ।
तुमने हलुआ, खीर–कचौरी पूरी खाई होंगी,
टॉफी–चाकलेट मैं तुमको, आओ आज खिलाऊँ।
आइसक्रीम खिलाये बिन तो होगा नहीं गुजारा।

आओ अपनी मधुर चाँदनी आँगन में छिटकाओ,
तारों की बारात सजाकर मेरे घर तक लाओ।
देखो गुब्बारों की मैंने बंदनवार सजाई,
आओ, छोड़ेंगे फुलझड़ियाँ, चकरी खूब चलाओ।
तुमको पाकर नाच उठेगा खुशियों से घर सारा।

मामा, तुमसे सीखूँगा मैं अच्छी–अच्छी बातें,
दिन भर गरमी नहीं लगेगी होंगी ठंडी रातें।
मामा, तुमको पाकर होंगी कितनी खुश माता जी,
नानी से कह दूँगा चरखा यहीं बैठकर काते।
तुम्हें देखकर आ जायेगा मेरे घर ध्रुवतारा।

❖❖❖

दीपक

- हरीसिंह पाल

हमारा काम है जलना
चाहे यहाँ जलें, या वहाँ जलें–
झोंपड़ी में, महलों या देवस्थान पर।
ये छोटे–मोटे आँधी, तूफान
हमें हिला तो सकते हैं,
मगर बुझा नहीं सकते।
हम वहीं है, जहाँ पहले कभी थे,
राह चलते, बाधा और मुश्किलें
आयीं तो क्या आयीं?
इससे हमारी राहें, क्षणिक ठहरीं जरूर,
मगर रुकीं नहीं।
यह तो और आगे बढने की
अदम्य लालसा बढ़ा गये।
हम न झुके कभी, न रुके कभी,
हमारी राह बदली तो
पर चाह नहीं बदली।
वो हम ही थे, जो हम बने रहे–
न कभी दीन बने, न कभी हैवान बने।
जीवन में उतार–चढ़ाव आये जरूर
और आगे भी आयेंगे,
न इनसे हम तब घबराए थे
और न अब घबरायेंगे।
जिंदगी चुक थोड़े जाती है,
मौसमी आँधी–तूफान से।
हम तब भी प्रकाश देते रहे
आगे भी देते रहेंगे।

❖❖❖

टूटी पड़ी है परंपरा

- श्रीकांत वर्मा

टूटी पड़ी है परंपरा,
शिव के धनुष–सी रखी रही परंपरा,
कितने निपुण आये–गये
धनुर्धारी।
कौन इसे बौहे? और कौन इसे
कानों तक खींचे?
एक प्रश्नचिह्न–सी पड़ी रही परंपरा।
मैं सबमें छोटा और सबसे अल्पायु –
मैं भविष्यवासी।
मैंने छुआ ही था, जीवित हो उठी।
मैंने जो प्रत्यंचा खींची
तो टूट गई परंपरा,
मुझ पर दायित्व
कंधों पर मेरे ज्यों, सहसा रख दी हो
किसी ने वसुंधरा,
सौंप मुझे मर्यादाहीन लोक
टूटी पड़ी है, परंपरा।

❖❖❖

फिर से गिरवी मकान है शायद

- विकास जोशी

फिर से गिरवी मकान है, शायद।
घर में बेटी जवान है, शायद।

ये लकीरें सी जो हैं, चेहरे पर
उम्र भर की थकान है, शायद।

जुल्म सह कर जो चुप हैं सदियों से,
उनके मुँह में जुबान है, शायद।

शय जिसे दिल कहा है दुनिया ने,
काँच का मर्तबान है शायद।

क्या छुपाया है हमसे बच्चों ने,
मुट्ठी में आसमान है, शायद।

ये हुकूमत है बहरी, ये तय है,
कौम भी बेजुबान है, शायद।

लोग अब मिल के भी नहीं मिलते
फासला दरमियान है, शायद।

❖❖❖

सृजन स्मरण

भवानी प्रसाद मिश्र

जन्म 29 मार्च 1913 निधन 20 फरवरी 1985

बुरी बात है।
चुप मसान में बैठे–बैठे
दुःख सोचना, दर्द सोचना।
शक्तिहीन कमजोर तुच्छ को
हाजिर नाजिर रखक,
सपने बुरे देखना।
टूटी हुई बीन को लिपटाकर छाती से
राग उदासी के अलापना।

बुरी बात है!
उठो, पाँव रक्खो रकाब पर,
जंगल–जंगल नद्दी–नाले कूद–फाँद कर,
धरती रौंदो।
जैसे भादों की रातों में बिजली कौंधे,
ऐसे कौंधो।

सृजन स्मरण

रांगेय राघव

जन्म17 जनवरी 1923 निधन 12 सितम्बर 1962

ओ ज्योतिर्मयि! क्यों फेंका है,
मुझको इस संसार में।
जलते रहने को कहते हैं,
इस गीली मँझधार में।

मैं चिर जीवन का प्रतीक हूँ,
निरीह पग पर काल झुके हैं,
क्योंकि जी रहा हूँ मैं
अब तक प्यार–भरों के प्यार में।